



॥ ॐ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री सनातन धर्म शास्त्र





विषय-सूची

| | |
|--|----|
| ॥ वेद ॥ | 3 |
| ॥ वेदांग ॥ | 16 |
| ॥ उपवेद ॥ | 24 |
| ॥ दर्शन शास्त्र ॥ | 29 |
| ॥ स्मृति शास्त्र ॥ | 34 |
| ॥ पुराण शास्त्र ॥ | 36 |
| ॥ पांचवां वेद महाभारत ॥ - | 43 |
| ॥ सम्पूर्ण ग्रन्थश्रीमद भागवत गीता ॥ - | 47 |



॥ वेद ॥

वेद क्या हैं? वेदों के कर्ता कौन हैं ? वेद कब लिखे गए थे?

सभी सनातन धर्म शास्त्रों का मूल वेद है। ज्ञान नित्य है, इस कारण प्रलय के समय भी ज्ञानरूपी वेद ओंकार रूप से नित्य स्थित रहते हैं। श्री वेदव्यासजी कहा है :

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।

श्रादौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

श्री भगवान के वाक्यरूपी वेद अनादि नाशविहीन तथा नित्य हैं। वेद ही सृष्टि की प्रथम अवस्था में प्रकाशित आदिविद्या है। इनसे ही सकल संसार का विस्तार होता है। प्रलय के समय में भी परमात्मा में सूक्ष्म रूप से वेद की स्थिति रहती है। महाप्रलय में भी वेदों का नाश नहीं होता।

वेदों का सूत्रधार कोई भी पुरुष या मनुष्य नहीं हैं, इस कारण वे अपौरुषेय कहलाते हैं। वेद ईश्वरकृत हैं और परब्रह्म स्वरूप हैं। वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषद् में लिखा है -

**अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् य इग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथ्वङ्गिरस इतिहासः
पुराणं विद्या उपनिषद् इत्यादि ।**

समस्त वेद विश्वास की रीति से स्वाभाविक रूप से परमात्मा के द्वारा प्रकट हुए हैं।



कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरोपनिषदमें लिखा है कि:-

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

परमात्माने पहले ब्रह्मांजीको उत्पन्न करके उनको वेद प्रदान किया।

दिशः श्रोत्रे वागिववृतषश्च वेदाः

उस विराट् परम पुरुष की श्रवणेन्द्रिय दिशा है और वाक्य वेद रूप हैं।

श्रीमद्भागवत गीता में भी लिखा है :

कर्म ब्रहीन्द्रव विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्रवम।

कर्म वेदसे उत्पन्न हैं और वेद अक्षर परमात्मा से उत्पन्न हैं।

ब्रह्मा, ऋषि, महात्मा वेद के कर्ता / रचियेता नहीं किन्तु द्रष्टा मात्र हैं। इसलिये कहा है कि:

ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ता स्मारक न तु कारकाः

ब्रह्मासे लेकर ऋषि पर्यन्त कोई भी वेद के कर्ता नहीं हैं, सब ही उनके स्मरण करने वाले हैं। प्रलय काल में अन्तर्हित वेदो को सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी की आज्ञा से महर्षियों ने तपस्या के बल पर प्राप्त किया था।



पश्चिमी विद्वानों ने वेदों का जन्मकाल निर्णय करने के लिये बहुत बुद्धि, धन व समय खर्च किया है। किसी विद्वान ने इनकी उत्पत्ति ईसा पूर्व २००० वर्ष निर्धारित की है और किसी ने ५००० वर्ष परन्तु कोई भी विद्वान् अपनी गणना को प्रमाणित करने में विफल रहा और अन्त में सभी को यह मानना पड़ा की समस्त पृथ्वी में वेदों से प्राचीन कोई भी ग्रन्थ विद्यमान नहीं है। संसार के सभी विद्वानों ने वेदों और उनमे निहित वैदिक विज्ञान के अनादि और अति प्राचीन होने के तथ्य को एक स्वर से स्वीकार किया है ।

वेदों के प्रकार

वेदों को दो प्रकार में विभक्त किया जा सकता है:

(१) कंठात - जिन श्रुतियों का ऋषियों ने प्रत्यक्ष किया था उन्हें कंठात कहते हैं। कंठात श्रुति मन्त्र भेद के अनुसार त्रिविध हैं - ऋग, यजुः तथा साम। इन्हे 'त्रयी' भी कहा जाता है। यही कंठात श्रुतियाँ अन्य प्रमाण से चार भागों में विभक्त हैं - ऋग, यजुः, साम तथा अथर्व। वर्तमान समय में जिस प्रकार भाषा - गद्य, पद्य और गीत के रूप में विभक्त हैं, इसी प्रकार का विभाग वेदों में मिलता है:

- पद्य में प्रकाशित मन्त्र - ऋक
- गद्य में प्रकाशित मन्त्र - यजुः
- गेय मन्त्र - साम
- अथर्ववेद में इन सभी, पद्य गद्य और गेय के मिश्रित मन्त्र हैं।



(२) कल्प - स्मृति या शिष्टाचार के द्वारा जिनका अनुमान किया जाता है उन्हें कल्प्य श्रुतियाँ कहा जाता है।

वेदों को पूर्ण क्यों माना जाता है ?

परमात्मा और आत्मा में यही अंतर है की परमात्मा पूर्ण है और आत्मा अपूर्ण। जो शास्त्र आत्मा को पूर्ण बना कर ब्रह्मरूप की ओर अग्रसर करे वही शास्त्र पूर्ण है। मनुष्यकृत शास्त्रों और भगवान् वाक्य शास्त्रों में भी यही अंतर है। जितने भी मनुष्य कृत शास्त्र हैं उनकी विवेचना करने से विचारवान् व्यक्ति को ज्ञात होगा की सभी शास्त्र प्रकृति का आंशिक वर्णन करते हैं और इस दृष्टि से अपूर्ण हैं। परन्तु अपौरुषेय वेद में यह अपूर्णता नहीं है और इसीलिए वेद भगवान् का वाक्य हैं।

यह बात सिद्ध है कि, पूर्ण प्रकृति ही पूर्ण ब्रह्म का प्रकट कर सकती है। अपूर्ण आत्मा की पूर्णता और ब्रह्मभाव प्राप्ति के द्वारा मुक्ति तभी होगी जब आत्मा प्रकृति पूर्णता को प्राप्त करेगी। प्रकृति अधिभूत, अधिदैव, आध्यात्म तीन कारकों से युक्त है। मनुष्य में यह तीनों कारक अधूरे हैं। अतः आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक पूर्णता मनुष्यों को प्राप्त होने पर आत्मा (मनुष्य जीव) ब्रह्मरूप बन सकता है।

इसलिये जिस शास्त्र में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रिविध शुद्धिके लिये उपाय पूर्णतया बताये गये हैं, वही शास्त्र पूर्ण और भगवान का वाक्य होगा। मनुष्य के लिये आधिभौतिक शरीर है, आधिदैविक मन है और आध्यात्मिक बुद्धि है। शरीर की शुद्धि कर्म के द्वारा, मन की शुद्धि उपासनाके द्वारा और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान के द्वारा होती है। अतः जिस शास्त्र में समान रूप से कर्म, उपासना और ज्ञान, तीनों के उपदेश की पूर्णता हो वही भगवान् का वाक्य होगा। श्रीमद्भागवत गीता भी भगवान्



वाक्य होने के कारण पूर्ण हैं और यही गुण वेदों में भी विद्यमान है। वेद अपने संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् रूपी तीन भागों के द्वारा कर्म, उपासना और ज्ञान का पूर्ण साधन बता कर आत्मा को सच्चिदानन्द परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति का पथ प्रदर्शित करते हैं। अतः अपौरुषेय या भगवान् का वाक्य है इसमें संदेह नहीं है।

वेदों में ऋषि, छन्द या देवताओं का वर्णन क्यों आता है ?

वेदों में जो ऋषि, छन्द और देवताओं का वर्णन आता है उसका अर्थ यह है कि, जिन त्रिकालदर्शी महर्षिगणों के हृदय में विभिन्न श्रुतियों का पहली बार अवतरण हुआ था अर्थात् जिन आचार्यों के द्वारा वे मन्त्र प्रकाशित हुए थे वे ही उन मन्त्रों के ऋषि कहलाते हैं। जिस छन्द में वे श्रुतियाँ कही गई हैं वही वेद मन्त्रों के छन्द कहलाते हैं और जिन श्रुतियाँ के द्वारा भगवान् की शक्तियों की उपासना की जाए, वे उपास्य शक्ति उन श्रुतियों के देवता कहलाते हैं। इसी नियमके अनुसार प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि, देवता और छन्द के उल्लेख करने की विधि वेदों में पाई जाती है। इसका आशय यह है कि छन्द के ज्ञात होने से उस मंत्र की आधिभौतिक शक्ति का ज्ञान होगा। देवता के ज्ञान से उक्त मन्त्र की अधिदैव शक्ति का ज्ञान होता है और ऋषि के ज्ञान से उस मन्त्र की आध्यात्मिक शक्तिपर लक्ष्य होता है।

वेदों की भाषा

वेदों की भाषा भी साधारण संस्कृत होते हुए भी अत्यंत सारगर्भित, संक्षिप्त, गम्भीर और भावयुक्त होने के कारण साधारण बुद्धिगम्य नहीं है। सब जीवों के हितकारी वेदों में ज्ञान से सम्बंधित अनन्त विषय रहने पर भी गूढ़ रहस्य छिपे हैं। यही कारण है की वेदों में वर्णित भावों के ना समझ पाने के कारण अल्पबुद्धि मनुष्यों के वेदार्थ समझने में



विचलित होने के कारण उनमें मतभेद, संदेह और अनेकों प्रश्नों की उत्पत्ति होती है। वेदों में वर्णित किसी भी एक श्लोक का बिना सन्दर्भ, भाव, ऋषि का ज्ञान किए बिना उसका अर्थ निकलना अत्यंत दुष्कर कार्य है। इसी का लाभ विधर्मी उठा कर, एक मन्त्र के अर्थ का अनर्थ बनाकर वेदों के विषय में जनसाधारण को भ्रमित करते हैं।

परन्तु वास्तव में शब्द ज्ञान रूपी वेद मूर्तिमान् ब्रह्मरूप ही हैं। जिस प्रकार एक अद्वितीय परब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप धारण कर, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय कार्य निर्धारित करते हैं, उसी प्रकार अपौरुषेय वेद भी उपासना, कर्म और ज्ञान के प्रकाश द्वारा, संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् रूपी त्रिमूर्ति को धारण कर समस्त संसार का कल्याण करते हैं।

वेदों के भाग

वेद तीन भागों में विभक्त हैं –

- (१) मन्त्रभाग;
- (२) ब्राह्मणभाग; और
- (३) आरण्यक।

आरण्यक ही उपनिषद् का मूल है। आरण्यक में ब्रह्म तत्व के जो मूल मन्त्र हैं उनका ही विस्तार उपनिषद् में किया गया है। प्राचीन काल में अनेकों तपोवन थे जहाँ वानप्रस्थाश्रमी वास करते थे और संन्यासी भी वहीं विचरण किया करते थे, अतः अरण्य में ही प्रकाशित होने से आरण्यक नाम पड़ा है।



जिसके द्वारा ब्रह्मका सामीप्यलाभ हो उसे उपनिषद् कहते हैं। उपनिषद् मूलतः वानप्रस्थ आश्रमी और सन्यालियों के द्वारा संग्रहित किये गए हैं। परम पवित्र उपनिषद् समूह मुक्ति पद प्राप्ति के प्रधान साधन हैं तथा ब्राह्मगाभाग और संहिताभाग मुख्यतः कर्म काण्ड और उपासना काण्ड के साधन हैं।

यद्यपि सब वेद एक ही हैं, तथापि कर्माधिकार भेदसे भिन्न होने के कारण विभिन्न प्रकार से संकलित किये गये हैं श्रौर ऋक्, यजुः साम श्रौर अथर्व ये भी चार प्रकारकी स्वतन्त्र श्रुतियों के विभाग कर देनेसे चार वेद कहलाने लगे हैं।

वेदों का विभाजन और वेदों की शाखाएँ

वेद विभाग कर्ताओं के विषय में दो प्रकार के मत मिलते हैं। पहला यह की महर्षि वेद व्यास ने ही एक वेद चार भागों में विभक्त किया है और वेदों का विभाग करने के कारण ही उनका नाम वेदव्यास पड़ा। दूसरा यह की यज्ञ क्रियाओं की सुविधा के लिए अथर्व ऋषि ने वेद विभाग किया था। उन्होंने यज्ञ कार्य में उपयोग होने वाले सूक्त समूह को एक करने अन्य सूक्तों को अलग कर दिया और इस प्रकार अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है

अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्योत्सामवेदः

अर्थात् अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद प्राप्त हुए

इसी प्रकार मनुसंहिता में भी लिखा है :



ऋचो यजूषि चान्यानि सामानि विविधानि च ।

एष ज्ञेयस्त्रिवृद्देदो यो वेदैः स वेदवित् ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, और इनसे भिन्न सामवेद के अनेक मन्त्र यह तीनों 'त्रिवृत्वेद' जानना चाहिए, जो इस त्रिवृत्वेद अर्थात् सभी वेदों को जानता है वही वस्तुतः 'वेदवेत्ता' है ।

वेद अनंत है (अनन्ता वै वेदाः) परन्तु वेदों के अनंत होने पर भी इस कल्प के वेदों की संख्या पाई जाती है। पतंजलि महाभाष्य में लिखा है:

**चत्वारोः वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः एकशतमध्वय्युर शाखाः सहत्रवतर्मा
सामवेदः एकविंशतिधा बाह्य वृचयं नवधा आश्रववर्णो वेदः**

अर्थात् अंग और रहस्य से युक्त चार वेद अनेको शाखाओं में विभक्त हैं। यजुर्वेद की १०१ शाखा, सामवेद की १००० शाखा, ऋग्वेद की २१ शाखा और अथर्ववेद की ६ शाखा हैं।

स्कन्द पुराण के अनुसार एक वेद पहले महर्षि वेदव्यास द्वारा ४ भाग में विभक्त किया गया और उसके पश्चात् उसी के ११३७ विभाग हुए जिनको शाखा कहते हैं। ऋग्वेद की २४ शाखा, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की १२ शाखाएं हैं।

परन्तु अत्यंत शोक का विषय है की वेदों की इतनी शाखाएं होने के बाद भी वर्तमान समय में केवल सात या आठ शाखाएं ही मिलती हैं। अनेकों संघर्षों, जातीय हिंसाओं तथा विदेशी आक्रमण के कारण वेदों के प्रधान अंश लुप्त हो गए हैं, परन्तु अभी भी संहिता इत्यादि जितने भी अंश मिलते हैं इस काल में विशेष कल्याण कारी हैं।



वेदों का संक्षिप्त वर्णन

ऋग्वेद संहिता दस मंडल में विभक्त है जिसमें ८५ अनुवादक हैं। अनुवादक समूह में १०२८ सूक्त हैं। सूक्तों के अनेकों भेद हैं जैसे - महसूक्त, मध्यमसूक्त, क्षुद्रसूक्त, ऋषिसूक्त, छंदसूक्त, देवतासूक्त इत्यादि। ऋग्वेद की पांच मुख्य शाखाएं हैं - आश्वलायन, संख्यायन, शाकल, वासकल और माण्डूक।

यजुर्वेद मुख्यतः दो भागों में विभक्त है - कृष्ण और शुक्ल। ब्राह्मण के मिले जुले होने से सरलता से समझ में ना आने के कारण कृष्ण होता है और दूसरा ब्राह्मण के पृथक होने के कारण शुद्ध होने से शुक्ल कहलाता है।

कृष्ण यजुर्वेदसंहिता का नाम तैत्तरीय संहिता है। विभिन्न ग्रंथों में यजुर्वेद की अनेको शाखाओं का वर्णन किया गया है परन्तु वर्तमान समय में यजुर्वेद की १२ शाखा और उपशाखों के नाम मिलते हैं।

शुक्ल यजुर्वेद का दूसरा नाम वाजनेय संहिता है। इसके ऋषि यज्वल्क्य हैं। शुक्ल यजुर्वेद में १६०० और इसके ब्राह्मण भाग में ७६०० मन्त्र हैं। शुक्ल यजुर्वेद की १७ शाखाएं हैं।

सामवेद की १००० शाखों का वर्णन मिलता है परन्तु आजकल सामवेद की केवल कौमुथ शाखा ही मिलती है। सामवेद के दो भाग हैं पूर्व तथा उत्तर। पूर्व संहिता के ६ प्रपाठक हैं इसको सप्त्सलाम भी कहा जाता है। उत्तरभाग का नाम आरण्य गण है। सामवेद के ब्राह्मण भाग में ८ ब्राह्मण हैं तथा दो उपनिषद प्रधान हैं छांदोग्य और केनोपनिषद।



अथर्ववेद के संकलकर्ताओं के विषय में तीन मत प्रचलित है - पहले मत में अथर्व ऋषि, दूसरे मत में अंगिरा ऋषि के वंशधर और तीसरे मत में भृगुवंशियों ने इसका संकलन किया था। अथर्ववेद में अन्य तीनों वेदों के मिले जुले मन्त्र मिलते हैं

प्रत्येक वेद में कौन सा विशेष गुण है, जो एक को दूसरे से पृथक् करता है, और जिसके कारण वेदों का विशेष महत्व स्थापित हुआ है ?

वास्तव में चारों वेद मिलकर एक ही वेद राशि है। जिस प्रकार सिर, हाथ, पेट और पांव मिलकर शरीर बनता है; किन्तु आत्मा, बुद्धि, मन, प्राण और स्थूल शरीर मिलकर ही एक मनुष्य पूर्ण बनता है; उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मिलकर एक वेद बनते हैं। अतः चार वेदों में ज्ञान दृष्टि से एकता है, परंतु प्रत्येक वेद में अपनी एक सस्वरूप विशेषता स्पष्ट है, जिसके कारण प्रत्येक वेद का अन्य वेदों की अपेक्षा, स्वतंत्र अस्तित्व से प्रकट होता है।

मनुष्य में चार बातें प्रमुख हैं:

- (१) बुद्धि,
- (२) प्राण,
- (३) मन,
- (४) वाचा

बाह्य इन्द्रियों में मनुष्यत्व की विशेषता वागइंद्री से सिद्ध होती है। वागइंद्री अर्थात् वाक्शक्तिके अभाव से मनुष्य की पशुपक्षियों के साथ समानता सिद्ध हो जायगी।



आंतरिक इंद्रियों में मन की प्रधानता है, सभी विषयों पर विचार करना, अच्छे बुरे का मनन करना इत्यादि कार्य मन के कारण ही होता है। इसके उपर जीवन की आधार रूप प्राणशक्ति है, जिसके रहने और न रहने से मनुष्य का जीवन या मरण है। इसके ऊपर आत्मा की अपनी शक्ति, जो बुद्धि रूप से प्रसिद्ध है, विराजमान है; यह शक्ति आत्माके साथ हमेशा रहती है, तथा इसका आत्माके साथ कभी वियोग नहीं होता। इन्ही चार शक्तियों की अध्यक्षता के बीच अन्य शक्तियां अपना अपना कार्य करतीं हैं, इसलिये इनको ग्रहण करने से सब अन्य स्वतः समावित हो जाती हैं।

हालाँकि बुद्धि, प्राण, मन और वाणी ये चार शक्तियाँ पशु पक्षियों में भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं, परन्तु जिस प्रकार मनुष्य इनसे कार्य ले सकता है, और अपनी तथा समाज की उन्नति कर सकता है, उस प्रकार कोई अन्य प्राणी नहीं कर सकता। इन्ही चार शक्तियों के साथ चार वेदों का संबंध यजुर्वेद अध्याय ३६ के प्रथम मंत्र ने स्वयं जोड़ दिया है:

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राण प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये।

वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥३६.१॥

- (१) ऋचं वाचं प्रपद्ये—मैं वाणी का आश्रय लेकर ऋग्वेद की शरण लेता हूँ,
- (२) मनो यजुः प्रपद्ये-मैं का आश्रय लेकर यजुर्वेद की शरण लेता हूँ,
- (३) साम प्राण प्रपद्ये-मैं प्राण का आश्रय लेकर सामवेद की शरण लेता हूँ, तथा
- (४) चक्षुःश्रोत्रं प्रपद्ये- मैं श्रवणशक्ति का आश्रय लेकर अथर्ववेद की शरण लेता हूँ

हम वाणी-रूप ऋग्वेद, मन-रूप यजुर्वेद तथा प्राण-रूप सामवेद की शरण में जाते हैं। वेदज्ञान प्राप्ति के लिए नेत्रों एवं कानों की सामर्थ्य की शरण ग्रहण करते हैं। वेदज्ञान



के विस्तार के लिए वाणी का ओज तथा वेदानुशासन के अनुगमन के लिए प्राण-अपान आदि सहित शारीरिक औजस् हमारे अंदर स्थापित हो।

इस मंत्र का थोडा सा विचार करने से चारों वेदों के विशेष गुणों की रचना का ज्ञान भी स्पष्ट हो जाता है :-

(१) ऋग्वेद वाणी की शुद्धि करनेवाला है। इसलिये इसके मंत्र समुदाय का नाम सूक्त है। सु - उत्तम , उक्त- कथन, सु+उक्त (सूक्त) अर्थात् उत्तम कथन, उत्तम विचार, सुविचार, सुभाषित, पवित्र विचारों के समुदाय का नाम ऋग्वेद है। सुविचारों से वाणीकी शुद्धि होती है। कुविचार को दूर करने और सुविचार को पास करने का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य ऋग्वेद करता है। मनुष्यों के विचार की और वाणी की शुद्धि ऋग्वेद के विभिन्न सूक्तों से होती है ।

(२) यजुर्वेद मन की शुद्धि करता है। यजुर्वेद के मंत्र समुदाय का नाम अध्याय है। अध्याय, अध्ययन, अभ्यास, मन के द्वारा होता है। यह मन जागृत अवस्था में सदैव किसी न किसी कार्य में लगा रहता है। इसलिये इसको सुकर्मों में संयुक्त कर शुद्ध करना यजुर्वेद का कर्तव्य है। पवित्र कर्मों से मन को शुद्ध करना यजुर्वेद से होता है।

(३) सामवेद प्राण की शक्ति के साथ रहने वाली निर्विकार अंतःकरण की पवित्रता बढाता है। मन, जो जागृति में संकल्पों- विकल्पों में लगा रहता है, उसकी शुद्धि सुकर्मों में संयुक्त होने से यजुर्वेद द्वारा की जा सकती है। परंतु उससे भी सूक्ष्म जो विशेष निर्विकार कल्पना शक्ति मनुष्य के अंदर विराजमान है, जो मन और प्राण के साथ निर्विकार ज्ञान से युक्त होती हुई मनुष्य के अंदर विलक्षण समर्थ उत्पन्न करती है।



उसकी पवित्रता उपासना द्वारा होती है जो सामवेद का कर्तव्य है। सामवेद मंत्र समुदाय को 'सामन्' कहते हैं, जिसका आशय चित्तवृत्ति की शांति से है।

(३) अथर्ववेद शुद्ध ज्ञान द्वारा बुद्धि और आत्मा की शुद्धि करता है। श्रवण इंद्रि के द्वारा ज्ञान बुद्धि के अंदर प्रवेश करता है, और बुद्धि को पवित्र करता है। अथर्ववेद के मंत्र समुदाय का नाम 'ब्रह्म' है। इसलिये अथर्ववेदको 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं।

मनुष्य की प्रमुख चार शक्तियों का चार वेदों के साथ संबंध होने के कारण ही प्रत्येक वेद का विशेष महत्व है।

।इति वेद भाग धर्मशास्त्र।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



॥ वेदांग ॥

वेदों में वर्णित अर्थ को बिना किसी सहायता के समझना अत्यंत कठिन कार्य है। जिस प्रकार साधारण व्याकरण एवं काव्य कोष आदि का पाठ करने से ही किसी भाषा के शब्दों को समझने की बुद्धि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार वेद पाठ द्वारा वैदिक तात्पर्य को समझने के लिए बुद्धि तभी प्राप्त हो सकती है जब वेद के छः अंगों अर्थात् वेदांग का अभ्यास किया जाए। यह कुछ इसी प्रकार है कि जिस प्रकार किसी पुरुष की परीक्षा की जाती है तो पहले उसकी आकृति, चेष्टा, गुण, प्रकृति, चरित्र आदि अनेक बातों के जानने की आवश्यकता होती है, और इन बातों को जाने बिना उस व्यक्ति का पूर्ण रीति से परिचय नहीं हो सकता

वेदों के छः अंगों के नाम मांडूकोपनिषद् में इस प्रकार वर्णित है -

शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ।

यह भी वर्णित है कि:

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्

तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥



इस वेदपुरुष के छन्दःशास्त्र चरण, कल्पशास्त्र हस्त, ज्योतिषशास्त्रं नयन, निरुक्तशास्त्र कान, शिक्षाशास्त्र नासिका और व्याकरण शास्त्र मुखरूप हैं।

१. शिक्षाशास्त्र

शिक्षा शास्त्र में वेदों के पाठ करने की शैली विस्तृत रूप से वर्णित है। वैदिक ज्ञानप्राप्ति के लिए अर्थ पाठ का ही प्रथम स्थान है। इसी कारण से शिक्षाशास्त्र की सर्वप्रथम आवश्यकता मानी गई है। शब्द के साथ शाब्दिक भाव का और वाचक के साथ वाच्य का सम्बन्ध है। परन्तु शब्द की शक्ति तभी पूर्णरूप से प्रकाशित हो सकती है जब शब्द अपने पूर्णरूप में उच्चारित हो। इसी प्रकार अलौकिक शक्तिपूर्ण वेद के पदसमूह द्वारा तभी पूर्णलाभ हो सकता है, कि जब वे अपनी वैज्ञानिक शक्तियुक्त यथावत् ध्वनि के साथ उच्चारित किये जाएँ।

वेदों की शिक्षा में केवल ह्रस्वादि तीन स्वरभेदीक वर्णन, पाठ की शैली और हस्तचालन आदि बाह्यक्रिया की शैली का वर्णन किया गया है और सामवेद सम्बंधित संगीत-शिक्षा में इन तीनों स्वरभेदों से और सात स्वरों की उत्पत्ति दिखाकर, उन्हीं की सहायता से असाधारण सूक्ष्म शक्ति की उत्पत्ति द्वारा, शब्द विज्ञान की और ही कुछ विशेष अलौकिकता आविष्कृत की गई है। पाणिनीय शिक्षा में लिखा है :

आत्मा बुझ्यासमेत्यार्थान्मने युङ्क्तै विचदाया ।

मनः कायाग्निमंहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।

मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरन् ।



जिस समय इस शरीर में स्वर सम्बंधित सृष्टि होती है, तो उसी सृष्टि नियम के अनुसार प्रथम आत्मा की प्रेरणा से बुद्धि, मन, प्राण शक्ति और प्राण वायु प्रेरित हो कर तदनन्तरं शब्द आविर्भूत होते समय शरीर के विशेष स्थानों का स्पर्श करते हुए शब्द को प्रकाशित करते हैं। परिणाम स्वरूप प्रत्येक स्वर के साथ आत्मा का सम्बन्ध रहता है। परन्तु वह आत्मशक्ति तब ही पूर्णरूपसे प्रकाशित हो सकती है कि, जब वह यथावत् शब्द के आश्रय से ध्वनित हो

इस कारण से वेदमन्त्ररूप शब्द ब्रह्म को अपने यथावत् शक्तियुक्त भाव में स्थिर रखने के अर्थ से इस शिक्षा शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। प्रत्येक वेद की प्रत्येक शाखा के उच्चारण के लिए इस प्रकार शिक्षा ग्रन्थ थे, जिनको 'प्रतिशाखा' भी कहा जाता था। इस समय शिक्षा के बहुत थोड़े ग्रन्थ विद्यमान हैं और साम शिक्षा, जिसका विस्तार अधिक था, उसके ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो गये हैं।

२. कल्प शास्त्र

कल्प शास्त्र मन्त्र सम्बंधित क्रिया सिद्धांश का वर्णन करते हैं जिस प्रकार बिना यथावत् ध्वनि के सहित उच्चारित हुए शब्दब्रह्म रूपी वेदमन्त्र पूर्ण फल प्रदान नहीं करते, उसी नियमके अनुसार वैदिक क्रिया सिद्धांश में जब तक प्रत्येक क्रिया के वैदिक कर्म-विज्ञान के अनुसार अनुसरण नहीं किया जायगा, तब तक वे क्रिया सिद्धांश फलदायी नहीं हो सकेंगे।

इस वेदांग में अग्निष्टोम इत्यादि यज्ञ, उपनयन आदि संस्कार और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आश्रम सम्बंधित अनेक कर्मों की साधन विधि का वर्णन किया गया है। यह संसार कर्ममय है, इसलिए वेदों में कर्म का अधिकार सबसे अधिक होने के कारण



कल्पशास्त्र भी बहुत विस्तृत है। जितनी शाखाओं में वेद विभक्त हैं। उतनी ही शाखाओं में अलग अलग कल्पशास्त्र हैं। यह शास्त्र सूत्रबद्ध होने के कारण कल्पसूत्र नाम से भी जाने जाते हैं।

आजकल क्रियाकाण्ड में जितने कल्पसूत्रों का व्यवहार होता है, वह मुख्यतः तीन भागों में विभक्त हैं। इन तीन श्रेणी के सूत्रों की पुनः अनेक शाखा हैं।

श्रौतसूत्र - इनमे यज्ञ आदि की विधि बताई गयी है।

धर्मसूत्र - सामाजिक जीवन यापन करनेके लिये जितने प्रकार के नियम पालन करने होते हैं, उन सबकी व्यवस्था धर्मसूत्रों में की गई है।

गृहसूत्र - गृहसूत्र में गृहधर्मकी विधि बताई गयी है अर्थात् जन्म से मृत्यु तक पिता, माता, पुत्र, पति,पत्नी आदि गृहस्थ वर्ग का एक दूसरे के प्रति क्या कर्तव्य है, इसका वर्णन उसमें है। अब भी गृहसूत्र के अनुसार जातकर्म, विवाह आदि नित्य-कर्म किये जाते हैं।

३. व्याकरण शास्त्र

व्याकरणशास्त्र शब्द अनुशासन का द्वार रूप है । जिस प्रकार साधना में लीन होने के लिए योगशास्त्र द्वारभूत है, और उसका भगवान पतञ्जलीजीने "अथ योगानुशासनम् " कहकर प्रारम्भ किया है, उसी प्रकार शब्दब्रह्म रूपी साधना में युक्त पदार्थों को ग्रहण करने के लिये व्याकरण शास्त्र वेद का द्वार रूप है और इस शास्त्र का भी भगवान् पतञ्जली जी ने 'अथ शब्दानुशासनम् ' कह कर प्रारम्भ किया है। जिस प्रकार शब्दमय



सृष्टि के होते समय भाव से वृत्ति और वृत्ति से शब्द की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार शाब्दिक सृष्टि उत्पन्न होते समय शब्द से अर्थ और अर्थ से भाव की उत्पत्ति होती है।

४. निरुक्त शास्त्र

व्याकरण शास्त्र द्वारा प्रथम शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है और उसके उपरांत निरुक्त शास्त्र द्वारा वेदों में वर्णित मन्त्रों का भावार्थ समझने में सहायता प्राप्त होती है। इस शास्त्र तो वेदों का कोष भी कह सकते हैं।

निरुक्त शास्त्र का भी निघण्टु नाम से एक अन्तर्विभाग है। निघण्टु द्वारा केवल वैदिक शब्दज्ञानमें सहायता प्राप्त होती है। वैदिक वर्णन-विचार के अनुसार वेदों में कई प्रकार की भाषाएँ हैं और सृष्टि के त्रिविध परिणाम के अनुसार वेदों में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, इन त्रिविध भावों का भी वर्णन पाया जाता है। इन सबका विस्तृत ज्ञान निरुक्त शास्त्र के अध्ययन से प्राप्त हो सकता है।

निरुक्त शास्त्र का सार यह है कि, जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र शब्द को नित्य मानता है, उसी प्रकार निरुक्त शाखा भाव को नित्य मानता है। जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र द्वारा ओंकार रूप से वेद की नित्यता सिद्ध है, उसी प्रकार निरुक्त के और भी उच्च विज्ञान द्वारा भावमय अध्यात्म स्वरूप की नित्यता की सिद्धि द्वारा ज्ञानमय वेदों की नित्यता प्रमाणित होती है। सृष्टि का आदि, मध्य और अंत इन तीन अवस्थाओं में एकमात्र भावमय चेतनसत्ता ही समानरूपसे स्थित रहा करती है, इस कारण भाव से ही जगत् की उत्पत्ति सर्वथा स्वीकार्य है। फलतः भाव प्रधान होनेके कारण शब्द यथार्थ भाग का वर्णन करना ही इस शास्त्र का लक्ष्य है।



प्राचीनकाल में निरुक्त शास्त्र का बहुत विस्तार था। पूज्यपाद महर्षिगणों द्वारा इस शास्त्र के अगणित बड़े बड़े ग्रन्थों के रचे जाने व वर्णन मिलता है, परन्तु आजकल निरुक्त शास्त्र एक छोटा सा यास्कमुनि कृत अंक निरुक्त के नाम से देखने में आता है।

५. छन्दः शास्त्र

छन्दः शास्त्र कुछ विलक्षण ही है, जिस प्रकार शिक्षा शास्त्र स्वर की सहायता से वैदिक कर्म काण्ड और उपासना काण्ड में सहायता किया करता है, उसी प्रकार यह छन्द शास्त्र भी छन्दोविज्ञान की सहायता से अलौकिक शक्तियों का आविष्कार करके वैदिक ज्ञान के विस्तार करने में और कर्म में सफलता प्राप्त कराने में बहुत ही उपकारी है। सिद्ध और साधक रूपसे जिस प्रकार ध्वनि के साथ अक्षर का सम्बन्ध होता है, उसी नियमके अनुसार शिक्षा शास्त्र का सम्बन्ध छन्दः शास्त्र से समझना चाहिये। प्रकृति का विस्तार अनन्त है, इस कारण छन्द भी अनन्त है तथा छन्दः शास्त्र के वक्ता महर्षियों ने जीवों के कल्याणार्थ प्रधान छंदों को छंद शास्त्र में नियमबद्ध किया है। वेदों में सात प्रकार के छंदों का उल्लेख मिलता है - गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुभ, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुभ तथा जगती।

६. ज्योतिष शास्त्र

सनातन धर्म में मनुष्य शरीर तो एक ब्रह्म अंश ही माना गया है और इस प्रकार परा ब्रह्माण्ड रूपी या यह संसार और पिण्डरूपी प्रत्येक मनुष्य के शरीर में एकत्व सम्बन्धयुक्त हैं, इसी कारण आर्यशास्त्रमें वर्णित है कि, जो कुछ बाहर ब्रह्माण्ड में है,



उन्हीं देवता, भूतसमूह और ग्रह नक्षत्र आदि काकेंद्र सब इस देहमें स्थित है, शिवसंहिता में लिखा है:

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीउदेवताः

मनुष्य के इस शरीर में सप्त द्वीप सहित सुमेरु है और नदी समुद्र आदि पर्वत और क्षेत्र, क्षेत्रपाल आदि सभी ऋषि मुनि सभी नक्षत्र, गृह पुण्यतीर्थ और पीठ देवता आदि सभी विद्यमान हैं। सौर जगत् के साथ इस प्रकार एकत्वसम्बन्ध रहने के कारण और जगत के अनुसार उसमें परिवर्तन होना युक्तियुक्त है। वेदाङ्गज्योतिष सिद्धान्त ज्योतिष है, जिसमें सूर्य तथा चन्द्र की गति का गणित है।

वेदाङ्गज्योतिष के महत्त्व के विषय में कहा गया है -

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥
वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्येतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥

जिस प्रकार मोरों में शिखा और नागों में मणि का स्थान सबसे उपर है, उसी प्रकार सभी वेदांगशास्त्रों में ज्योतिष का स्थान सबसे उपर है। वेद यज्ञों के लिये प्रवृत्त हैं



और यज्ञ काल के अनुसार किये जाते हैं, ज्योतिष काल-निर्णय करने वाला शास्त्र है, इसको जो ज्ञानता है चही यज्ञों को जानकर कर सकता है।

गणित ज्योतिष द्वारा बहिर्जगत संबन्धीय ग्रह,नक्षत्र समूह के परिवर्तन और काल के विभाग का निर्णय किया जाता है और फलित ज्योतिष द्वारा गृह नक्षत्र आदि की गतियों की सहायतासे इस जगत् के एवं इस जगह से सम्बंधित सृष्टि और मनुष्यों के आन्तरिक परिवर्तनों का निर्णय होता है। ज्योतिषशास्त्र के ये दोनों ही अङ्ग मानव जाति के लिये अत्यंत उपकारी हैं ।

।इति श्री सनातन धर्म शास्त्र - वेदांग।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



॥ उपवेद ॥

जिस प्रकार लौकिक पुरुषार्थयुक्त योग, साधनयुक्त उपासना और वैदिक कर्म परम्परा रूप से मुक्तिपद की प्राप्ति में सहायक होते हैं, जिस प्रकार धर्म, अर्थ और काम ये तीन परम्परा रूप से अन्तिम फल, मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होते हैं, और जिस प्रकार किसी जीव की लौकिक उन्नति उसकी आध्यात्मिक उन्नति का उपाय होता है, उसी प्रकार उपवेद समूह मनुष्य की क्रमोन्नति के सहायक हैं, और क्रमोन्नति में सहायक होने के कारण ये पौरुषेय होने पर भी उपवेद कहलाते हैं।

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः ।

स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः ॥

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद - यह चार उपवेद हैं ।

१. आयुर्वेद

किसी भी साधना को पूर्ण करने के लिए शरीर मुख्य कारण है । शरीर यदि स्वस्थ और सबल न हो, तो मनुष्य न तो इस लोक में उन्नति कर सकता है, और न ही साधना को पूर्ण कर परलोक में । इस कारण शारीरिक मंगल का सहायक चिकित्सा-शास्त्र-रूपी आयुर्वेद सबसे प्रथम माना गया है। आयुर्वेद में सृष्टिविज्ञान, शारीरिक विज्ञान, धातु विज्ञान, रोगोत्पत्ति विज्ञान, रोगपरीक्षा विज्ञान, शल्य चिकित्सा विज्ञान, रसायन चिकित्सा विज्ञान, आदि अनेक वैज्ञानिक रहस्यों का वर्णन है।



आजकल की पश्चिमीय उन्नत मेडिकल विज्ञान का सिद्धांत क्रमशः परीक्षा द्वारा पारंगत होने के सिद्धांत पर नियत है अर्थात् साधारण मनुष्य-बुद्धिके प्रयोग द्वारा क्रमशः परीक्षा करते हुए यह विद्याएँ प्रकट हुई हैं। परन्तु प्राचीन काल में पदार्थ विद्या के सम्बन्ध में जो कुछ उन्नति हुई थी, उसके प्रकाशक योगिराज महर्षिगण थे। इस कारण उस समय की आवश्यकता के लिये उन्होंने जो कुछ अपनी योगयुक्त बुद्धि से देखा था, वह सब बिना किसी भ्रम ही देखा था।

उस समय की पदार्थ विद्या दार्शनिक सिद्धान्तों से भी सिद्ध थी। उहाहरण के रूप में समझ सकते हैं कि, जिस प्रकार सृष्टिके स्वाभाविक सप्त भेद दर्शनसिद्ध हैं; यथा- सप्त उच्चलोक, सप्त अधोलोक, सप्त व्याहृति, सप्त रङ्ग, सप्त स्वर, सप्त ज्ञानभूमि इत्यादि; उसी प्रकार आयुर्वेदके अनुसार शरीर में भी सात प्रकार के धातु माने गये हैं। दूसरा जिस प्रकार सृष्टि त्रिगुणात्मक होनेके कारण सृष्टि के सब विभाग त्रिगुणात्मक हैं, यथा- त्रिविध ज्ञान, त्रिविध कर्म, त्रिविध भाव, त्रिविध अधिकार इत्यादि, उसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र ने वात, पित्त, कफ, इन तीनों पर शारीरिक विज्ञान स्थित किया है।

२. धनुर्वेद

धनुर्वेद के ग्रंथों में मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान, मन्त्र विज्ञान, लक्ष्य सिद्धि, अस्त्र शस्त्र विज्ञान आदि अनेक विषयों का वर्णन था। जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र शारीरिक स्वास्थ्य और बलदायक है और शरीर स्वस्थ होने से मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है, उसी प्रकार धनुर्वेद शास्त्र स्वधर्म रक्षा, जातिगत जीवन रक्षा, शान्ति रक्षा, स्वदेश रक्षा आदि का प्रधान सहायक है और आधिभौतिक मुक्ति अर्थात् जातिगत स्वाधीनतारूपी मुक्ति प्राप्त करनेका तो यह शास्त्र एकमात्र अवलम्बन है।

मनुष्य के लिये महर्षियों ने केवल दो प्रकार की विहित मृत्यु लिखी है, यथा



द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परित्राड योगयुक्तश्च रणे चाऽभिमुखे हतः ॥

योग द्वारा उत्तम मृत्यु और धर्मयुद्ध में कीर्तिकर मृत्यु, दोनों मृत्यु की मुक्ति दायक है। युद्धविद्या भी केवल धर्मयुद्ध का ही अनुमोदन करती है, अधर्मयुद्ध निंदनीय और अहितकर समझा गया है। वर्तमान समय में शास्त्र विज्ञान ने अत्यधिक प्रगति की है परन्तु जितने दिव्य अस्त्र शस्त्र प्राचीनकाल में प्रचलित थे, जिस प्रकार विमान निर्माण करने की शैली प्रकट थी, जिस प्रकार व्यूहरचना प्रणाली प्राचीन सनातन धर्मियों को विदित थी, वैसी विचित्रता अभी तक प्रकट नहीं हुई हैं।

सनातन धर्मियों में युद्धविद्या की कुछ विलक्षणता थी। धीरता की पराकाष्ठा, सरल नीति की पूजा और सब दशा में धर्म का प्राधान्य, सनातन युद्ध विद्या द्वारा अनुमोदित था। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जब योद्धा दिनमें धर्मयुद्ध करते थे और रात्रि में युद्ध विराम होने पर होने पर सेवा और चिकित्सा एक दूसरे के शिविर में जाकर करते थे। यह सब धनुर्विद्या की शिक्षा का ही परिणाम था।

३. गंधर्ववेद

जैसे आयुर्वेद से शरीर का सम्बन्ध है उसी प्रकार गंधर्ववेद का सम्बन्ध मन के साथ है। संगीत की सहायतासे मन स्वस्थ और बलशाली होता इस विषय में प्रामाणिकता की कोई आवश्यकता नहीं है। श्रीभगवान कृष्ण ने श्री मद्भागवत गीता में कहा है कि:-

वेदानां सामवेदोऽस्मि



में वेदों में सामवेद हूँ। ऐसा कहकर जो सामवेदकी प्रधानता कही है वह गान्धर्व वेद की सहायता के कारण ही है। सामवेद की तरह लोकमोहन और वेद नहीं है। इसी कारण इसका अन्य वेदों से सहस्र गुणा विस्तार हुआ था।

पूजाकोटिगुणं स्तोत्रं स्तोत्रात्कोटिगुणो जपः ।

जपात्कोटिगुण गानं गानात् परतरं न हि ॥

उपासना सम्बन्धी शास्त्रों ने सर्वोपरि संगीत की महिमा का कीर्तन किया है। प्राचीनकाल में गान्धर्ववेद मुख्यतः दो भागों में विभक्त था:

१. देशीविद्या; और

२. मार्गीविद्या

देशी विद्या लोक मनोरंजन में और मार्गीविद्या वेदगान में उपयोगी है। इनमें से मार्गीविद्या लुप्त हो गयी है तथा देशी विद्या भी अपभ्रंश रूप में ही विद्यमान है। प्राचीनकाल में सोलह सहस्र राग-रागिणी और ३३६ ताल व्यवहृत होते थे। प्राचीन काल में लोक मनोरंजनकारी देशी विद्या त्रयी विद्या भी कहाती थी, क्योंकि देशी विद्याके तीन विभाग हैं - गीत, वाद्य और नृत्य। प्राचीन नृत्य विद्या का शुष्क कङ्काल को आजकल का कथक नृत्य कह सकते हैं।

प्रणव (ॐ) के साथ ईश्वरका साक्षात् सम्बन्ध है, इस कारण संगीत की सहायता से अन्तःकरण की उन्नति और ईश्वर का साक्षात्कार होना गान्धर्ववेद- विज्ञान सिद्ध करता है। इस समय जो कुछ अल्प रूप से यह शास्त्र उपलब्ध होता है उसकी विशेष उन्नति होने से मनुष्य जाति की मानसिक उन्नति में विशेष सहायता होगी, इसमें सन्देह नहीं है।



४. स्थापत्यवेद

स्थापत्यवेद में अनेकों प्रकार के शिल्प, कला, और विज्ञान का वर्णन था। शास्त्रों में ऐसा वर्णन है कि यह वेद बहुत बड़ा था और चौसठ विभाग में विभक्त था। जिस प्रकार अंतर्जगत सम्बंधित उन्नति का लक्षण दार्शनिक उन्नति से परिमाणित होता है, उसी प्रकार लौकिक बुद्धि अर्थात् मनुष्य की बाहरी उन्नति, उस मनुष्यजाति के शिल्प, कला और विज्ञान संबन्धीय उन्नति से समझी जाती है।

प्राचीन काल में सनातन धर्मियों के द्वारा अट्टालिकानिर्माण, सेतु निर्माण, मन्दिरादि निर्माण, आदि की कितनी उन्नति हुई थी वह प्रमाण आजकल के ध्वंसावशेषों मिलता है, अभी भी बहुत से ऐसे चिह्न विद्यमान हैं (जैसे रामसेतु, मोहनजोदड़ो अवशेष इत्यादि) जिनको देखकर पाश्चात्य प्रसिद्ध शिल्पीगण चकित होकर उनका होना असम्भव समझते हैं।

प्राचीन काल में पशुविद्या, प्रस्तरविद्या, लौहादिक कठिन धातु और सुवर्णदि कोमल धातुकी उपयोगी विद्याएँ, वनस्पतिविज्ञान, अनेकों प्रकार के याननिर्माण की विद्या, भूमि के अंतर्गत पदार्थ और जलनिराकरण की विद्या, कृषिविद्या, अनेक वस्त्र आभूषण तथा रत्नों के सम्बन्ध की शिल्पविद्या, आकाश तत्व विद्या, वायुतत्व विद्या, अग्नितत्व विद्या ग्रादि अनेक लोकोपकारी शिल्प तथा पदार्थ विद्याओं का विकास भली भाँति हुआ था, इसके प्रमाण अभी भी विद्यमान हैं।

।इति उपवेद।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



॥ दर्शन शास्त्र ॥

आध्यात्म उन्नति के सात क्रम हैं उन्ही सात कर्मों के अनुसार वैदिक धर्म शास्त्रों को भी पूज्य महर्षियों ने सात श्रेणियों में ही विभक्त किया है। यह सातों दर्शन तीन भावों के अनुसार तीन भाव में विभक्त हैं।

न्याय और वैशेषिक दर्शन – पदार्थवाद संबन्धीय

योगदर्शन और सांख्य दर्शन – सांख्य प्रवचन संबन्धीय

कर्म मीमांसा, देवी मीमांसा और ब्रह्म मीमांसा – मीमांसा संबन्धीय

दर्शन शास्त्र के सिद्धांतों के तीन प्रकार को इस प्रकार भी समझ सकते हैं की प्रथम दो स्थूल विज्ञान, दुसरे दो सूक्ष्म विज्ञान और तीसरे तीनों कारण विज्ञानमय हैं। सभी सातों दर्शनों का मुख्य उद्देश्य दुःख नाश और नित्यानंद की प्राप्ति है। दर्शन शास्त्र जीव को दुखमय संसार से मुक्त कर आनंदमय ब्रह्म धाम में पहुंचता है, इसलिए इनका नाम दर्शन शास्त्र है।

न्यायदर्शन

न्यायदर्शन महर्षि गौतम द्वारा रचित है, इसको आन्वीक्षिकी या अक्षपाद दर्शन भी कहते हैं। प्रमाद के द्वारा पदार्थों का निरूपण अथवा दूसरों को समझने के लिए प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन और निगमन इन पाँचों कारकों की अवतारणा का नाम न्याय है।

न्यायदर्शन को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं - तर्क, न्याय और दर्शन। तर्कांश में तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा आदि विषय हैं। न्यायअंश में प्रमाण आदि के



विषय में चर्चा की गयी है और दर्शनांश में आत्मा अनात्मा की विवेचना है। न्यायदर्शन पांच अध्यायों में विभक्त है तथा इसका प्रतिपाद्य विषय सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान द्वारा दुःख निर्वर्ती है। आत्मा की शरीर में आसक्ति होने से अहं ज्ञान का उदय होकर आत्मा को दुःख होता है। अतः शरीर से आत्मा को पृथक कर देना ही इस दर्शन के अनुसार मुक्ति है।

वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद हैं। इसमें 'विशेष' नामक एक अतिरिक्त पदार्थ स्वीकृत होने से इसका नाम वैशेषिक दर्शन हुआ है। वैशेषिक दर्शन में ३७० सूत्र हैं जोकि १० अध्यायों में विभक्त है। धर्म विशेष से उत्पन्न द्रव्य, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छह पदार्थों के साधारण धर्म और विशेष धर्म द्वारा ज्ञानजनित तत्वज्ञान के द्वारा निःश्रेयस लाभ होता है। इस प्रकार निःश्रेयस लाभ का उपाय बताना ही वैशेषिक दर्शन का उद्देश्य है।

योग दर्शन

योगदर्शन महर्षि पतंजलि द्वारा कृत है। इसमें १३५ सूत्र हैं जिन पर भगवान् वेदव्यास ने भाष्य किया है। योग दर्शन के चार पाद हैं - समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्य पाद। समाधिपाद में योग का उद्देश्य और लक्षण, वृत्ति का लक्षण, योग का उपाय, फल और प्रकार भेद वर्णित हुआ है। साधन पाद में क्रियायोग, क्लेश कर्म और उसका दुःख का वर्णन है। विभूतिपाद में योग का अंतरंग परिणाम, संयम के द्वारा प्राप्त विभूति और विवेक से उत्पन्न ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। कैवल्य पाद में मुक्ति के योग्य चित्त, परलोक सिद्धि, बाह्यार्थ सद्भाव सिद्धि, चितरिक्त आत्मा की सिद्धि, धर्म मेघ समाधि, जीवनमुक्ति और विदेह कैवल्य का वर्णन है।



सांख्य दर्शन

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल हैं। सांख्य प्रवचन के सूत्र छः अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में दुःख के कारणों का विवचेचन किया गया है, प्रकृति पुरुष है अविवेक अर्थात् अभेद ज्ञान दुःख का हेतु है। द्वितीय अध्याय में प्रकृति का सूक्ष्म कारण और तृतीय अध्याय में स्थूल कार्य स्थूल शरीर और वैराग्य तत्व का निरूपण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में शास्त्रोक्त आख्याओं का उल्लेख कर विवेकज्ञान का उपदेश और पंचम अध्याय में परपक्ष का खंडन है। छठे अध्याय में शास्त्र के मुख्य विषयों की व्याख्या और शास्त्रार्थ का उपसंहार किया गया है।

अन्य दर्शनों की तरह सांख्यदर्शन का विषय दुःख निर्वृति है। संसार दुखमय है, पुरुषार्थ के द्वारा वह दुःख दूर किया जा सकता है, ज्ञान ही परम पुरुषार्थ है, ज्ञान के द्वारा मनुष्यों का दुःख नाश और मुक्ति लाभ होता है।

कर्ममीमांसा दर्शन

वेदों का प्रथम उपदेश कर्मकांड हैं, उस कर्मकांड की मीमांसा करने वाले दर्शनशास्त्र को कर्ममीमांसा दर्शन कहते हैं। कर्म साधारण और विशेष दो भागों में विभक्त होने के कारण कर्म मीमांसा के दो ग्रन्थ हैं एक के प्रधान आचार्य महर्षि जैमिनी हैं तथा दुसरे के प्रधान आचार्य महर्षि भरद्वाज हैं।

वेद के कर्मकांड का प्रतिपादक कर्ममीमांसा दर्शन है। इसको पूर्व मीमांसा भी कहते हैं। महर्षि जैमिनी इसके प्रवर्तक हैं। इसमें बारह अध्याय हैं। यज्ञ अग्निहोत्र, दान आदि विषय इसमें वर्णित हैं। इसके मत में वेदों में वर्णित केवल कर्मकांड ही सार्थक है। वेदों में जो तत्वज्ञान का उपदेश किया गया है, उसका उद्देश्य देह से भिन्न आत्मा का



अस्तित्व प्रमाण करके जीव को अदृश्य स्वर्ग आदि के साधन रूप याग यज्ञ में प्रवृत्त करना है ऐसा जैमिनी मीमांसा का सिद्धांत है।

कर्मराज्य के साधारण विस्तार, साधारण गति और साधारण शक्ति के विज्ञानो का प्रतिपादक महर्षि भरद्वाज कृत कर्ममीमांसा दर्शन है। इस ग्रन्थ में अनेकों विज्ञान के रहस्य का वर्णन किया गया है। यह दर्शन शास्त्र चार भागों में विभक्त है। कर्म के अनादि, अनंत स्वरूप और कर्म के विस्तृत रूप कप समझने के लिए यह ग्रन्थ अत्यंत आवश्यक है। इसके प्रथम पाद - धर्म पाद में धर्म के लक्षण, अंग, उपांग, ईश्वर का स्वरूप इत्यादि का वर्णन है। द्वितीय पाद - संस्कार पाद में संस्कार के लक्षण, विज्ञान, सृष्टि से संस्कार का सम्बन्ध, षोडश संस्कार का विज्ञान आदि का वर्णन है। तृतीय पाद - कर्म पाद में कर्म का स्वरूप, कर्म का वैज्ञानिक रहस्य, कर्म की गति, प्रवाह और विचित्रता आदि विषयों का वर्णन है। चतुर्थ पाद - मोक्ष पाद में कार्य और कारण ब्रह्म की एकता, बंधन और मोक्ष के कारणों का वर्णन है।

दैवीमीमांसा दर्शन

दैवीमीमांसा दर्शन के प्रतिपादन करने का विषय परमात्मा की आनंद सत्ता है और कहा गया है की आनंद सत्ता के सत और चित दोनों में ही व्यापक होने से सद्भाव और चिद्भव दोनों में ही आनंद भाव की प्राप्ति होती है। प्रथम पाद - रस पाद में दोनों और से प्राप्त होने वाली इसी आनंद सत्ता का ही वर्णन है। द्वितीय पाद का नाम उत्पत्ति पाद है। उत्पन्न होने वाले संसार के ले की विधि ना जाने से वैराग्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी कारण मरण व उत्पत्ति के परिणाम में व्याप्त दुःख के अर्थ ही उत्पत्ति पद में वर्णित है। तृतीय पाद - उपासना पाद में ब्रह्म ज्ञान तथा परमज्ञान की प्राप्ति के उपाय का वर्णन है।



पराभाव या परमज्ञान को प्राप्त करना ही देवी मीमाँसा का अनुभव है। "यह जगत वे हैं" - यह कर्म मीमाँसा का अनुभव है। "वे ही यह जगत हैं" यह दैवी मीमाँसा का अनुभव है तथा "मैं ही वे हूँ" यह ब्रह्म मीमाँसा का अनुभव है।

ब्रह्ममीमाँसा दर्शन

वेदोक्त ज्ञान काण्ड की प्रतिष्ठा ही ब्रह्म मीमाँसा दर्शन का लक्ष्य है। इसे वेदांत दर्शन भी कहा जाता है। यह दर्शन सप्तम ज्ञान भूमि का होने के कारण अन्य सभी दर्शनों में श्रेष्ठ है। इसके प्रवर्तक महर्षि वेदव्यास हैं। वेदों के अंतिम अर्थात् ज्ञानकांड का प्रतिपादक होने के कारण इस दर्शन को उत्तरमीमाँसा भी कहा जाता है और ब्रह्म ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य होने के कारण इसे ब्रह्म मीमाँसा भी कहते हैं।

वेदांत दर्शन में चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार चार पाद हैं। प्राथम अध्याय का नाम समन्वय है - इसमें स्पष्टज्ञापक श्रुतिसमूह, अस्पष्ट ब्रह्म भावात्मक श्रुतिसमूह आदि का वर्णन है। द्वितीय अध्याय का नाम अविरोध है - इसमें स्मृति तर्क आदि विरोध परिहार आदि विसयों के द्वारा विरोधी दार्शनिक मतों का खंडन करके युक्ति तथा प्रमाण के साथ महर्षि वेदव्यास ने वेदांत मत का अविरोध प्रतिपादन किया है। तृतीय अध्याय का नाम साधन है - इसमें आत्मा तथा ब्रह्म के लक्षण का निर्देश कर मुक्ति के साधनों का उपदेश है। चतुर्थ अध्याय- फल में जीवनमुक्ति, सगुण तथा निर्गुण उपासना के फल के तारतम्य पर विचार किया गया है। ब्रह्म मीमाँसा दर्शन का मुख्य उद्देश्यजीव तो दुखमय संसार से मुक्त करके आनंदमय ब्रह्मपद में स्थापित करना है।

।इति दर्शनशास्त्र।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



॥ स्मृति शास्त्र ॥

वैदिक तत्वों को स्मरण करके पूज्य महर्षियों ने मानव कल्याण के लिए जिन ग्रन्थों की रचना की उन्हें स्मृतिशास्त्र कहते हैं। विभिन्न कल्पों में जिस प्रकार वेदों की संख्या विभिन्न हुआ करती है उसी प्रकार अनुशासन शास्त्रों में प्रधान स्मृति शास्त्रों की संख्या भी नियमित हुआ करती है। वर्तमान कल्प के स्मृतिग्रन्थों की निम्न संख्या हैं:-

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः ।

यमापस्तम्बसंवर्तः कात्यायनबृहस्पती ॥

पराशर व्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ ।

शातातपो वशिष्टचश्य धर्मशास्त्र प्रयोजकाः ॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वसिष्ठ ये धर्मशास्त्र (स्मृति शास्त्र) के प्रायोजक हैं। इन्हीं स्मृतियों को प्रधान स्मृतियाँ माना जाता है। इनके अतिरिक्त गोभिल, जमदग्नि, विश्वामित्र, प्रजापति, वृद्ध शातातप, पैठीनसि, आश्वलायन, पितामह, बौद्धायन, भरद्वाज, छागलेय, जाबालि, च्यवन, मरीचि, कश्यप आदि ऋषियों द्वारा रचित उपस्मृतियाँ भी हैं ।

कहीं कहीं यह मतभेद भी है की प्रधान स्मृतियाँ केवल दो हैं - याज्ञवल्क्य और मनु , उपस्मृति अट्टारह हैं और, औप स्मृतियाँ भी अट्टारह हैं। प्राचीन काल में तीन प्रकार की स्मृतियाँ कल्पसूत्रों के सामान सूत्रकार में प्रचलित थीं। ऐसा कहा जाता है की मूल स्मृतिकारों ने स्मृति शास्त्र को सूत्रबद्ध ही बनाया था परन्तु बाद में सर्व साधारण के



कल्याण के लिए उनकी शिष्य परम्परा ने स्मृतियों को श्लोकबद्ध कर दिया। अन्य उपदेशों के अतिरिक्त स्मृतियों में मानव आचार, कार्यकलाप तथा सामाजिक रिति का वर्णन किया गया है। कैसा व्यवहार तथा आचरण व्यक्ति को लौकिक और पारलौकिक उन्नति की ओर अग्रसर कर सकता है और कैसे निषिद्ध कर्मों के त्याग से मनुष्य अधोगति से बच सकता है, यह सभी कर्म स्मृतियों में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता की स्मृतियों में वर्णित कुछ विषय वर्तमान समय में ना तो प्रासंगिक है न ही वांछित और यही हिन्दू सनातन धर्म की विशेषता है की यह समय के साथ अपना विकास करता रहता है।

।इति स्मृतिशास्त्र।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



॥ पुराण शास्त्र ॥

दर्शन शास्त्र, स्मृति शास्त्र आदि की तरह पुराण शास्त्र भी उपयोगी शास्त्र हैं क्योंकि वेदों में जिन तत्वों का वर्णन कठिन और गूढ़ वैदिक भाषा द्वारा किया गया है, पुराण में उन्हीं गूढ़ तत्वों को सरल लौकिक भाषा में समझाया गया है। यही कारण है की पुराण शास्त्रों को इतना महत्त्व दिया जाता है। छांदग्योनिशद में कहा गया है -

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमी यजुर्वेदम सामवेदमथ्वरणं।
चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम।।

मैं ऋग यजु साम और अथर्ववेद को जानता हूँ और पांचवां वेद इतिहास पुराण भी मैं जानता हूँ।

श्री भगवान् वेदव्यास जी कहते हैं की महापुराण अट्टारह है:

अष्टादशं पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते।
ब्रह्मं पाद्यं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥
तथान्यं नारदीयश्च मार्कण्डेश्च सप्तमम ।
आग्नेयमष्टचैव भविष्यं नवमं स्मृतम ॥
दशम ब्रह्मवैवर्तं लैंगमेकडशं स्मृतम ।
वाराहं द्वादशचैव स्कान्दं चैव त्रयोदशम ॥
चतुर्दशम वामनश्चय कौमर पंचदशं; स्मृतम।
मात्स्यं च गरूडश्चैव ब्रह्मांडश्चैव तत परम ॥



ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मतस्य पुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण यही अट्टारह महापुराण हैं

इसी प्रकार उपपुराण भी अट्टारह हैं:

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ।
तृतीयं वायवीयं च कुमारेणनुभाषितम् ॥
चतुर्थं शिव धर्माख्यां साक्षानंदीशभाषितम् ।
दुर्वासोक्तमाश्वरं नारदीयमतः परम् ॥
नंदिकेश्वरयुग्मश्च तथैवाशनसेरितम् ।
कापिलं वरुणं सामबं कालिकाह्वयमेव च ॥
माहेश्वरं तथा देवी ! देवं सव्वार्थसायकम् ।
पराशरोक्तमपरं मारीचं भास्कराह्वयम् ॥

सनत्कुमारोक्त आद्य, नारसिंह, कुमारोक्त, वायवीय, नंदीश भाषित, शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, नंदिकेश्वर के दो, उशना, कपिल, वारुण, साम्ब, कालिका, महेश्वर, दैव, पराशर, मारीच, भास्कर यह अट्टारह उपपुराण हैं।

उपरोक्त महापुराण तथा, उपपुराणों के अतिरिक्त और भी अनेक पुराण मिलते हैं जो की औपपुराण हैं, जिनकी संख्या भी अट्टारह है। इस प्रकार से पुराणशास्त्र महापुराण, उपपुराण, औपपुराण, इतिहास और पुराणसंहिता इन पांच भागों में विभक्त है।



पुराणों के अतिरिक्त जो इतिहासग्रन्थ हैं - श्री रामायण व महाभारत वे भी पुराणों के अंदर ही हैं। हरिवंश पुराण महाभारत के अंतर्गत ही माना जाता है। पुराण और इतिहास शास्त्रों को कुछ आचार्यों ने कर्म विज्ञान प्रधान - महाभारत , ज्ञानविज्ञान प्रधान - रामायण और पंचोपासना प्रधान - अन्य पुराण में भी विभक्त किया है। वास्तव में अन्य पुराणों में पंचोपासना की पुष्टि की गयी है। जगजनम को आदिकारण मान कर ही विभिन्न पुराणों में श्रीविष्णु, श्री सूर्य, श्री भगवती, श्री गणपति और श्री सदाशिव की उपासना का समर्थन किया गया है।

प्रधान देवताओं की स्तुति के कारण ही विभिन्न मतों के द्वारा विभिन्न पुराणों को महापुराण माना जाता है। महापुराणों के लक्षण का वर्णन इस प्रकार किया गया है

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

महाभूतों की सृष्टि, समस्त चराचर की सृष्टि, वंशावली, मन्वन्तर वर्णन और प्रधान वंशो के व्यक्तियों का विवरण, पुराणों के ये पांच लक्षण हैं।

पुराणों में तीन प्रकार की भाषा वर्णित की गयी है - समाधि, लौकिक तथा परकीय। इसी कारण से पुराणों के मूल रहस्य को समझने में भ्रान्ति होती है जो उपयुक्त ज्ञान के द्वारा दूर हो सकता है। पुराणों में अनेकों ऐसी कथाएं मिलती हैं जो लौकिक भाषा में वर्णित हैं परन्तु सभी का आध्यात्मिक भाव निकालने पर कथाओं का सही भाव निकला जा सकता है। उदाहरण के लिए शिवमहापुराण में एक कथा आती है की नारायण जल के अंदर सोये हुए थे, उनके नाभि कमल से ब्रह्मा जी प्रकट हुए फिर उन दोनों में यह मतभेद हो गया की कौन बड़े हैं, उनमे वादविवाद चल ही रहा था की उनके बीच एक



प्रचंड ज्योतिर्लिंग प्रकट हो गया, ब्रह्मा जी ऊपर की ओर गए और विष्णुजी नीचे की ओर परन्तु कोई भी उसके आदि या अंत का पता नहीं लगा पाया, जिससे उनको पता चला की उनके बीच कोई तीसरा भी है जो सबसे श्रेष्ठ हैं, इस बात को जान कर उन्होंने विवाद बंद कर दिया इत्यादि। यदि लौकिक भाषा में पढ़ा जाए जो इसका साधारण अर्थ यह निकलता है की भगवान् सदाशिव ही तीनों देवताओं में सर्वप्रथम है परन्तु यदि आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ यह निकलता है यह अनादि अनंत शरीररूपी विराटपुरुष ही सच्चिदानंद परब्रह्म का चिन्ह या लिंग है। क्योंकि यह कथा शिवपुराण की है और पुराण भावप्रधान ग्रन्थ है तो शिवपुराण के शिव साधारण शिव नहीं है परन्तु परब्रह्म परमात्मा स्वरूप हैं। यही अर्थ श्रीविष्णुपुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में वर्णित कथाओं का निकलना चाहिए।

विभिन्न पुराणों में अलग अलग देवता को सर्वोपरि बताने का क्या कारण है? क्या इसका कारण एक इष्ट देव को दूसरे से श्रेष्ठ या निम्न दिखाना है?

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा केवल एक हैं, वे ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी और सर्वश्रेष्ठ है और वस्तुतः प्रत्येक इष्टदेव उन्ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के पूर्ण या अंश स्वरूप हैं। वह परमात्मा ही सकल जीवों के आधार हैं जो एक परम ज्योति पुञ्जय के रूप में विद्यमान हैं तथा इस चराचर जगत को नियंत्रित करते हैं। भक्तों की रक्षा करने के लिए साकार रूप में भी समय समय पर प्रकट होते हैं तथा प्रलय काल में अपने अंदर समेट लेते हैं।

एको ही रुद्रो न द्वितियाय तस्थु यर् इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यडजनासितष्ठति संकुचोचानतकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा।।



जो अपनी स्वरूपभूता विविध शासन -शक्तियों द्वारा इन सब लोकों पर शासन करता है। वह रुद्र (परमात्मा) एक ही है। इसलिए ज्ञानीजनों ने दुसरे का आश्रय नहीं लिया है। वह एक ही परमात्मा समस्त जीवों के हृदय में स्थित है। सम्पूर्ण लोकों की रचना करके, उनकी रक्षा करने वाला परमेश्वर प्रलय काल में इन सबको अपने अंदर समेट लेता है।

निराकार परब्रह्म का साकार रूप धारण करना स्वयं उनके अधीन नहीं है। जिस अवतार में भक्त जैसी प्रभु की भक्ति होती है वैसी ही मूरत में निराकार परम ब्रह्म भक्तों के प्रेम से आह्लादित हो कर साकार रूप में उनको दर्शन करते हैं। श्रीमद् भगवत् गीता में अर्जुन ने पहले श्री कृष्ण से विश्वरूप दर्शन की इच्छा प्रकट की, फिर चतुर्भुज की और उसके पश्चात् द्विभुज की, पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उसकी इच्छा अनुसार दर्शन देकर निराकार रूप की भी सम्प्रभुता स्थापित कर दी।

पद्मपुराण में नारद द्वारा भगवान् विष्णु से यह पूछे जाने पर कि - " हे प्रभु , तुम तो सर्वत्र हो, किन्तु उनमें भी तुम्हारा सर्वाधिक प्रिय स्थान कौन सा है ?" भगवान् निजमुख से कहते हैं :

नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।

मदभक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥"

हे नारद, मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, योगियों के हृदय में भी नहीं रहता । मेरा प्रिय स्थान वही है जहां मेरे प्रिय भक्तगण मनप्राण से मुझे स्मरण करते हैं, भजन - कीर्तन करते हैं।

साकार रूप में किसी भी इष्टदेव- सर्वश्री राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, देवी, गणेश की पूजा की जाये वास्तव में उस निराकार परब्रह्म, परमात्मा की ही पूजा की जाती है जो रूद्र



स्वरूप या ज्योति के रूप में विद्यमान हैं। भक्त चाहे जिस भी इष्ट देव के उपासना करे उसे सदैव यही समझना चाहिए की मैं जिस इष्टदेव की उपासना करता हूँ, वे ही परमेश्वर निराकार रूप से सर्वज्ञ विद्यमान हैं, सब कुछ उन्ही की कृपा दृष्टि से हो रहा है। वे सर्वव्यापी, सर्वगुण संपन्न परमात्मा भक्तों की रक्षा करने के लिए विभिन्न स्वरूप धारण करके अनेकों लीलाएं करते हैं।

श्रीमद्भागवत गीता (१०. ३) में भी भगवान् श्री कृष्ण ने यही कहा है :

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

जो मुझको अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित, अनादि और लोकों का महान ईश्वर तत्त्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

यही कारण है की विष्णुपुराण में भगवान् विष्णु को ही सर्वोपरि, इस संसार की उत्पत्ति का कारण बताया गया है और शिव पुराण में भगवान् शिव को, इसी प्रकार से देवी भागवत में देवी को, गणेश पुराण में गणेश जी को तथा सौरपुराण में श्री सूर्य को ही सर्वोपरि, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान बताया गया है। इस प्रकार पुराणों के पढ़ने से उनमें परस्पर विरोध, एक इष्टदेव की दूसरे के प्रति श्रेष्ठ का भाव प्रतीत होता है परन्तु इसका भाव यह है की जैसी सती -पार्वती जी लिए शिवजी ही श्रेष्ठ हैं, लक्ष्मी जी के लिए भगवान् विष्णु ही श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार भक्त को अपने इष्टदेव की समीपता शीघ्र प्राप्त कराने के लिए पुराण रचियति महर्षि वेदव्यास ने प्रत्येक पुराण के अधिष्ठाता देवता को परमात्मा का रूप मान इनकी रचना की है।



प्रत्येक पुराण में उसके अधिष्ठाता देवता को परमात्मा का रूप बताने का प्रयोजन दुसरे की निंदा करने से नहीं है परन्तु उनकी प्रशंसा से है और उस प्रशंसा से उपासक की अपने इष्टदेव में श्रद्धा जागृत कर एकनिष्ठ भक्ति करने के उद्देश्य से उचित भी है। यदि आप ध्यान दें तो पाएंगे की जितने भी पुराण - उपपुराण हैं उनके अधिष्ठाता देवता का नाम और प्रकृति विभिन्न होते हुए भी उनका लक्ष्य एक पूर्ण परमात्मा की और रखा गया है और हर इष्टदेव को ब्रह्मा का रूप दिया गया है। इसीलिए प्रत्येक पुराण - उपपुराण में उसके अधिष्ठाता देवताओं की स्तुति मिलती जुलती होती है क्योंकि परमात्मा की महिमा, अतिशय, अपार और अपरिमित होने से उनकी महिमा को शब्दों में बांधना या वाणी द्वारा उच्चारण किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

अतः आशय यह है जो भक्त जिस देवता की उपासना करता है, उसको अपने उपास्य देव को सर्वोपरि पूर्णब्रह्म परमात्मा मान कर करनी चाहिए। इस प्रकार की दृष्टि रखकर उपासना करने से ही सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

जयति शिवाशिव जानकी राम। गौरी शंकर सीता राम।
जय रघुनंदन जय सियाराम। गोपी प्रिय श्री राधेश्याम।
दुर्गाति नाशिनी दुर्गा जय जय, काल विनाशिनी काली जय जय।
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते।

।इति पुराणशास्त्र।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



॥ पांचवां वेद – महाभारत ॥

महाभारत को पांचवां वेद क्यों कहा जाता है ?

महाभारत को महाकाव्य या इतिहास ग्रन्थ भी कहा जाता है परन्तु वस्तुतः यह एक धर्मकोश है; जिनमे तत्कालीन सामाजिक राष्ट्रीय और अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाले सभी विचारों का समावेश किया गया है। महाभारत से पूर्व विद्यमान ग्रंथों में जिन विषयों का विवेचन किया है; उन सब का सूक्ष्म दर्शन इस ग्रन्थ में मिलता है। महाभारत के आदिपर्व महाभारत की महत्ता स्थापित करते हुए कहा गया है :

इदं हि वैदेः समिताम पवित्रमापी चोत्तमम् ।

श्रावणामुत्तमं चेदं पुराणं मृषि संस्तुतम् ॥

(आदिपर्व ६२।१६)

यह ऋषियों द्वारा प्रशंसित पुरातन इतिहास श्रवण करने योग्य तथा सब ग्रंथों में श्रेष्ठ है। यह वेदों के सामान ही उत्तम है।

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम् ।

मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनमितबुद्धिना ॥

अमित तेजस्वी एवं मेधावी व्यासजी में इसे पुण्यमय धर्मशास्त्र, उत्तम अर्थशास्त्र तथा सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी कहा है।

महाभारत में किन विषयों का समावेश किया गया है, इसके विषय में स्वयं महर्षि वेदव्यास जी ने आदिपर्व में कहा है।



भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत्।
वेदा योगः सविज्ञानो धर्मार्थः काम एव च॥४६॥
धर्मार्थाकामयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च।
लोकयात्राविधानं च सर्वे तद् दृष्टवानृषिः॥४७॥
इतिहासा सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रंथस्य लक्षणम्॥४८॥

अर्थात् सभी प्राणियों के स्थान, सभी रहस्य, वेद, योगशास्त्र, विज्ञान, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, धर्म, अर्थ, तथा काम के वर्णन करने वाले ग्रंथों के सार, इस संसार में सुखपूर्वक रहकर जीने आदि सभी बातों का वर्णन इस महाग्रंथ में किया गया है। व्याख्या सहित इतिहास इसमें शामिल है। अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों मार्गों का अपूर्व वर्णन भी इसमें समाहित है।

महर्षि व्यास जी के इस कथन से यह स्पष्ट है की महाभारत को रचने में व्यास जी का उद्देश्य मात्र कौरवों और पांडवों के इतिहास का वर्णन करना ही नहीं था, परन्तु मनोरंजक कथा के माध्यम से लोगो को धर्म समझाना ही था। क्योंकि केवल धर्म के आचरण से मनुष्यों को अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

यही कारण है की महाभारत में वेदों के रहस्य, उपनिषदों का तत्वज्ञान, अंग-उपांगों की व्याख्या, इतिहास और पुराण का विकास, त्रिकाल का निरूपण, जरा, मृत्यु, भय, व्याधि, भाव, अभाव का विचार, त्रिविध धर्म और आश्रम का विवेचन, वर्णधर्म, तप, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चंद्र, सूर्य, युग सहित ग्रह नक्षत्रों के प्रमाण, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, तीर्थ, नदी, पर्वत, वन, सागर, दिव्य कल्पनाएं, युद्ध कौशल आदि सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है:



इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यतीति।।

इतिहास और पुराणों के सहायता से ही वेदों के अर्थ का विस्तार एवं समर्थन करना चाहिए। जो इतिहास एवं पुराणों से अनभिज्ञ हैं, उनसे वेद डरते हैं की कहीं यह मुझ पर प्रहार न करदे।

प्राचीन काल में जब सब देवताओं ने मिलकर तराजू के एक पलड़े पर चारों वेदों को और दूसरे पलड़े पर महाभारत को रखा और जब यह ग्रन्थ रहस्यसहित चारो वेदों की अपेक्षा अधिक भारी निकला, तभी से संसार में महाभारत के नाम से जाना जाने लगा। सत्य के तराजू में तौलने से यह ग्रन्थ, महत्त्व, गौरव एवं गंभीरता में वेदों से भी अधिक सिद्ध हुआ। अतः महत्ता , भार अथवा गंभीरता की विशेषता से ही इसको महाभारत कहते हैं। इसका तात्पर्य यही है की वैदिक तत्वज्ञान को ही महाभारत में इस रूप में प्रस्तुत किया गया है, की सर्व साधारण के लिए उस तत्वज्ञान को समझना सरल हो गया है।

उपनिषदों का भी मुख्य विषय आध्यात्म होने से मनुष्य उनके अध्यन्न से अध्यात्म शास्त्र में तो परिपूर्ण हो जाता है, पर सांसारिक व्यवहार शास्त्र में पूर्ण नहीं होता। परन्तु महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमे आध्यात्म और व्यवहार दोनों का ही समावेश हो जाता है, अतः महाभारत का अध्यन्न करने वाला व्यक्ति दोनों दृष्टियों से योग्य बन जाता है। स्वयं महर्षि व्यास का कथन है :

यो विद्याच्चतुरो वेदान सांगोपनिषदों द्विजः।
न चाख्यानमिदं विद्यात्रैष स स्याद्विचक्षणः।।



जो विद्वान अंगों सहित चारों वेद और सम्पूर्ण उपनिषद जानता हो, परन्तु उसने महाभारत का अध्ययन न किया हो तो वह विचक्षण या बुद्धिमान नहीं हो सकता।

ऐसा कोई भी विद्या का पक्ष नहीं जिसे महर्षि वेदव्यास ने इस महाग्रंथ में स्पर्श नहीं किया हो। महाभारत में सभी शास्त्रों के सार का समावेश है और इसीलिए महाभारत को पांचवां वेद भी कहा जाता है।

॥ इति महाभारत ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवायः ॥



॥ सम्पूर्ण ग्रन्थ- श्रीमद् भागवत गीता ॥

श्रीमद्भागवत गीता को सम्पूर्ण ग्रन्थ क्यों कहा जाता है ?

गीता पूर्ण ज्ञानकी गङ्गा है, गीता अमृतरस की ओजस धारा है। गीता इस दुष्कर संसार सागर से पार उतरनेके लिये अमोघ तरणी है। गीता भावुक भक्तों के लिये गम्भीर तरङ्गमय भावसमुद्र है। गीता, कर्मयोग परायण मनुष्य को सत्यलोकमें ले जाने के लिये दिव्य विमान रूप है । गीता ज्ञानयोगनिष्ठ मनुष्य को जीवन्मुक्त बनानेके लिये अमृत समुद्र रूप है, गीतासंसार मरुभूमिमें जले हुए दुःखित जीवनके लिये मधुर जलसे पूर्ण मरू उद्यान है। जितना भी कहा जाये, शब्दों में गीता की अपूर्व गाथा का वर्णन हो ही नहीं सकता है।

गीता एक पूर्ण ग्रन्थ है जिसमे सम्पूर्ण उपनिषदों का आध्यात्मिक ज्ञान सारतत्व में उदित हुआ है इसलिए गीता को गीतोपनिषद (उपनिषद को गीत या गान के रूप में है) भी कहा गया है। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों के विज्ञान का अंश और तीनों का सामजस्य गीता में प्रकट है। पूर्ण वस्तु वही है, जिसमें जीव की पूर्णता विधान करनेके लिये पूर्ण उपदेश किया गया हो। जीवकी पूर्णता त्रिभाव की पूर्णता के द्वारा ही हो सकती है। उसमे शरीर आधिभौतिक भाव है, मन अधिदैवभाव है और बुद्धि अभ्यात्मभाव है, इसलिये शरीर, मन और बुद्धि तीनों की पूर्णता से ही साधक पूर्ण ब्रह्म रूप को प्राप्त कर सकता है।

शरीर की पूर्णता कर्म से, मन की पूर्णता उपासना से और बुद्धि की पूर्णता ज्ञान से होती है। इसलिये जिस पुस्तक में कर्म, उपासना और ज्ञान, तीनों का ही पूर्णतया वर्णन किया



गया है, वही पूर्ण पुस्तक है। पूर्ण होने का एक और कारण भगवान का वाक्य है, क्योंकि भगवान पूर्ण है। गीता में गीतामें समाधि-भाषा पूर्ण है, जिसमें समस्त उपदेशों का ज्ञान भरा हुआ है। इस प्रकार की ज्ञानमयी भाषा को पूर्ण ज्ञानी के सिवाय और कोई नहीं कह सकता है, क्योंकि समाधि भाषाके कहने वाले केवल पूर्ण समाधिस्थ पुरुष ही हो सकते हैं।

वेदों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का जीवों के उद्धारके लिये पूर्ण वर्णन किया गया है, इसलिये वेद भगवान का वाक्य हैं , इसी प्रकार गीता में भी अठारह अध्यायों में कर्म, उपासना और ज्ञान का वर्णन किया गया है। इसके सब अध्यायो में सब तरह की बातें होने पर भी प्रधानतः पहले छः अध्यायोंमें कर्म का, अगले छः अध्यायों में उपासना का और अंत के छः अध्यायों में ज्ञान का उपदेश किया गया है, इसलिये गीता पूर्ण है।

पूर्णताका और एक लक्षण हैं साम्प्रदायिक का आभाव और निष्पक्ष उदार भाव की प्रधानता। ऋषियों की बुद्धि और साम्प्रदायिक पुरुषों की बुद्धि में इतना ही अन्तर है। ऋषियों की बुद्धि पूर्ण होने के कारण उसमें साम्प्रदायिक पक्षपात नहीं रहता एवं उसमें किसी एक भाव की प्रधानता मानकर दूसरे भावों की निन्दा नहीं की जाती। भगवान वेदव्यास ने पूर्ण ऋषि होनेसे भिन्न भिन्न पुराणोंमें सभी ज्ञानों का वर्णन किया है परन्तु किसी की भी निन्दा नहीं की। साम्प्रदायिक पुरुषों बुद्धि इस प्रकारकी नहीं होती, वे एक ही भावको प्रधान मानकर औरों की निन्दा करते हैं। भारतवर्ष में जब से इस प्रकारके साम्प्रदायिक मतों का प्रचार हुआ है, तभी से भारतमें अशान्ति और मतद्वैधता फैल गई है, और एक दूसरे की निन्दा व ईर्ष्या फैला कर धर्म के नाम पर अधर्म होने लगा है। परन्तु गीता में इस प्रकार के विचार नहीं हैं, क्योंकि गीता भगवानके मुख से उच्चारित हुआ पूर्ण ग्रन्थ है, इसलिये गीता सम्पूर्ण मनुष्य जाति का सामान रूप से कल्याण करने



वाली है। इसमें कर्मों के लिये निष्काम कर्म का उदारभाव, भक्तों के लिये भक्ति का मधुरभाव और ज्ञानीके लिये परम ज्ञान का गम्भीरभाव, सभी भाव सामजस्य से वर्णित किये गए हैं, जिससे गीता का पाठ करके सभी धर्म के लोग सन्तुष्ट होते हैं।

गीता की एक और पूर्णता यह है कि, गीता में भक्ति के छः अध्याय कर्म और ज्ञान के बीच में रखे गये हैं, क्योंकि भक्ति में मध्य में होने से कर्म मिश्रित, शुद्ध और ज्ञान मिश्रित यह तीनों प्रकार की भक्ति, सभी मनुष्यों का कल्याण कर सकती है। भक्ति सभी साधनों का प्राणरूप है, चाहे कर्मों हो, चाहे ज्ञानी हो, भक्ति मध्य में न होने से दोनों में बंधन की आशङ्का रहती है। भक्तिहीन कर्म अहंकार और कर्तृत्व उत्पन्न कर सकता है, परन्तु यदि कर्मों अपने को भगवान का निमित्तमात्र मानकर, जगत सेवा को भागवत सेवा समझकर, भक्ति के साथ कर्म करे तो, उस कर्म से अहंकार या बन्धन उत्पन्न नहीं होगा। उसी प्रकार भक्ति विहीन ज्ञान वाले मनुष्य में तर्कबुद्धि और अभिमान उत्पन्न होकर, ज्ञानमार्गी पुरुष को बंधन में डाल सकता है, परन्तु ज्ञान के मूल में भक्ति रहने से ज्ञानी भक्त पूर्ण बन जायगा, केवल तार्किक और अभिमानी नहीं रहेगा, जिससे उसको पूर्णज्ञान की प्राप्ति होगी।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में मध्य के अध्यायों में भक्ति को इसीलिए भी रखा है क्योंकि दो विरुद्ध पक्षों में विवाद के समय, मध्यस्थ शान्त पुरुष ही विवाद को मिटाता है और विवाद को आगे नहीं बढ़ने देता। कर्म और ज्ञान में सदा ही विवाद है। कर्म जो कुछ कहता है ज्ञान उससे उल्टा कहता है। कर्म के मत में जगत् सत्य है और ज्ञान के मतमें जगत् मिथ्या है। कर्म के मत में मनुष्य को कर्मों होना चाहिये और ज्ञान के मत में निष्कर्मों होना चाहिये। इसलिये श्रीभगवान श्रीकृष्ण ने दोनों के मध्य में भक्ति को रख कर कर्म और ज्ञान का विवाद मिटा दिया है।



पूर्णता का और एक लक्षण यह है कि, गीता में परस्पर दोनो विरुद्ध भावों में सामजस्य रखा गया है। पूर्ण पुरुष वही है जिनमें सुख दुःख आदि में सामान भाव रखने के शक्ति हो। उसके मन में सुख में हर्ष तथा दुःख में विषाद का भाव नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि वह सुख दुःख से परे आनन्दमय साम्यदशा को प्राप्त कर लेता है। पूर्णावतार में भी यही लक्ष्य पाया जाता है, क्योंकि, पूर्णज्ञानी होनेके कारण उनमें सकल प्रकार के विरुद्ध भावों का सामजस्य रहता है। भगवान श्रीकृष्ण में इसी प्रकार परस्पर विरुद्ध भावों का सामजस्य था, इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, वे भगवानके पूर्णावतार थे और उन्ही पूर्णावतार के श्रीमुख से उच्चारित गीता सम्पूर्ण ग्रन्थ है।

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥



संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवायः॥